

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय चिन्तन की प्रासंगिकता

[मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा आयोजित 'शरद व्याख्यान माला' तथा डॉ० वासुदेव पोरीर एवं सुश्री अल्पना मिश्र के सम्मान समारोह के अवसर पर, दिनांक 04.02.2007 को भोपाल में दिया गया न्यायमूर्ति श्री रमेशचन्द्र लाहोटी, पूर्व प्रधान न्यायाधीश, भारत का वक्तव्य]

विषय को मूर्त रूप देने की दिशा में पहला कदम — उनको नमन, जिनके कारण हम सब आज यहां एकत्रित हुए हैं। भारतीय चिन्तन के अनुरूप हमारा कर्तव्य है कि हम उनके प्रति कृतज्ञता और उनका साधुवाद ज्ञापित करें जिन्होंने मातृभूमि और मातृभाषा की सेवा कर, स्वधर्म पालने का उत्कृष्ट आदर्श और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। यहां स्वधर्म में 'धर्म' का प्रयोग मैंने शब्द के विषद् अर्थ में किया है। धर्म के व्यापक अर्थ में समाहित है ऐसा उत्तम आचरण जिसकी पृष्ठभूमि में संस्कार हैं और कर्तव्यपालन की चाह है।

आदरणीय डॉ० वासुदेव पोरीर तथा सुश्री अल्पना मिश्रा जिनका आज हम सम्मान कर रहे हैं, दोनों में से प्रत्येक ने लेखक का धर्म निबाहा है। न केवल उन्होंने, बल्कि उनकी लेखनी ने भी अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है। एक चिंतक ने कहा है कि जीयो तो ऐसा जीवन जीयो कि जिसमें लिखने लायक कुछ हो। और, लिखो तो ऐसा लिखो कि जिसमें जीने लायक कुछ हो। जीवन ऐसा कि जिसे कोई लेखक कृति का रूप दे सके। और, कृति ऐसी हो कि जीवन में रूपांतरित हो सके। 'विश्व की काल यात्रा' की रचना कर डॉ० वासुदेव पोरीर ने मातृभाषा हिन्दी की स्पृहणीय सेवा की है। एक अद्भुत ग्रंथ की रचना हिन्दी में हुई है जिसे प्रत्येक सुविज्ञ और जिज्ञासु पाठक पढ़ना चाहेगा। सुश्री अल्पना जी की कृति 'भीतर का वक्त' मैंने देखी नहीं है किंतु लेखिका और कृति, दोनों का जैसा परिचय दिया गया है उससे मैं आश्चर्य हूं कि उन्होंने भी रचनाकार के धर्म का निर्वाह किया है और अपनी लेखनी का लेखनी के कर्तव्य से साक्षात्कार कराया है। दोनों का अभिनंदन।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्री कैलाश चंद्र जी पंत, प्रो० डॉ० आशा शुक्ला — इन सभी का भी आभार कि मंचासीन प्रतिभा Üय का सम्मान करने का अवसर देकर उन्होंने मेरा भी सम्मान बढ़ाया है।

भारतीय चिंतन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि तब था जबकि चिंतन प्रारंभ हुआ था। समय बदलता गया, इतिहास ने कई करवटें ली, भारतीय दर्शन और भारतीय संस्कृति पर अनेक आक्रामक प्रहार हुए किंतु हमारा चिंतन आज भी जीवित है, चिरजीवंत है। वह आज भी चुनौतियों से लड़ने की शक्ति रखता है।

इकबाल का मुक्तक है:—

यूनान—ओ—मिस्र—ओ—रोमां सब मिट गए जहां से
अब तक मगर है बाकी नामो—निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे—जहां हमारा।

स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि जो इकबाल ने लिखा—‘कुछ बात है’, वह क्या बात है ? कौन से कारण हैं कि भारतीय चिंतन न तो टूटा न बिखरा, न ध्वस्त हुआ ? कुछ तो बाह्य कारण हैं जो प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं। हमारे चिंतन को पोषण और प्रोत्साहन देने वाले समर्थ और सशक्त व्यक्ति और संस्थाएं मौजूद हैं जैसे श्री पोलर, श्री पंत और यह समिति जिसके ध्वज तले आज का यह मंच बना है। कुछ आंतरिक अथवा आधारभूत कारण हैं जो भारतीय चिंतन में समाहित हैं। भारतीय चिंतन का स्रोत भारतीय संस्कृति है, और है भारतीय दर्शन। दोनों ही अतिउदार और विनम्र। वे साहचर्य और सहअस्तित्व में विश्वास रखते हैं। किसी से लड़ते नहीं हैं। अपने आपको किसी पर बलात थोपते नहीं हैं। वे किसी को विवश नहीं करते कि हमें स्वीकार करो। वे केवल अपनी गुणवर्ती और अपने गुणधर्म पर जीवित रहते हैं। न केवल यह बल्कि जब भी कोई चिंतन बाहर से आया और हमें कोई ऐसी बात लगी जो श्रेष्ठ है, स्वीकार्य है तो भारतीय चिंतन ने उसे अपनाकर अपने में समाहित कर लिया। वह गुण का ग्राहक है। जहां आवश्यक हो हम तन कर खड़े होते हैं, समझौता नहीं करते। जहां आवश्यक हो विनम्रतापूर्वक झुकते हैं, बांहे फैलाकर स्वागत भी करते हैं। हम न किसी से परहेज करते हैं और न किसी को त्याज्य मानते हैं। पर हम किसी पर आक्रमण नहीं करते। न प्रहार करते हैं, न बल प्रयोग करते हैं।

एक वृद्ध साधक नदी के किनारे चल रहा था। साथ में शिष्य थे। यकायक पांव फिसल गया। साधक नदी में गिर पड़ा और तेज धार में बहने लगा। पहाड़ी नदी थी। शिष्य किनारे-किनारे चलते हुए पीछे-पीछे भागे। कुछ आगे जाकर नदी एक झरने के रूप में गहरी घाटी में गिरने लगी। शिष्यों को लगा कि अब तो घाटी से गुरु जी का मृत शरीर ही प्राप्त होगा। शिष्य प्रयास पूर्वक घाटी में पहुंचे किंतु यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि नदी से गुरुजी सशरीर चलते हुए बाहर आ रहे हैं। शिष्यों ने कौतूहलपूर्वक पूछा— “आप कैसे बच गए ? आपको कोई चोट नहीं आई?” वृद्ध साधक ने कहा— “मैं जानता था कि इस तरह नदी की तेज धार से मैं संघर्ष नहीं कर सकूंगा। नदी के प्रबल वेग पर विजय पाकर मैं इसे अपने अनुकूल नहीं बना सकता था इसलिए मैंने स्वयं को नदी की धार के अनुकूल बना लिया। नदी के बहाव में स्वयं को छोड़ दिया। तेज बहती हुई धारा के साथ मैं बहता गया। उछला, घूमा, गिरा पर पानी के साथ-साथ। और, जैसे ही प्रबल वेग शांत हुआ मैं पानी से निकल आया।”

भारतीय चिंतन में ऐसा ही लोच है। वह अपने आधारभूत शरीर का त्याग नहीं करता किंतु समय के साथ बदलने की और परिस्थितियों के अनुरूप ढाल लेने की अद्भुत क्षमता उसमें है। सूप के स्वभाव वाले साधु की तरह वह सार को ग्रहण करता है, थोथे को उड़ा देता है और इस प्रकार शनैः शनैः समृद्ध और सशक्त होता चला जाता है। इसलिए भारतीय चिंतन समयातीत है।

स्वामी विवेकानंद के जीवन का एक बड़ा ही प्रेरक प्रसंग है। अमेरिका के प्रवास में वहां के लोगों ने उन्हें सुझाव देते हुए पूछा कि अमेरिका भौतिक दृष्टि से समृद्ध है और भारत निर्धन, तो वहां सुख-समृद्धि से परिपूर्ण जीवन का निर्माण करने के लिए भारत को अमरीकी जीवनपद्धति क्यों नहीं अंगीकार कर लेनी चाहिए? इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया था — ‘मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु एक कठिनाई है। आपकी सभी पद्धतियां अभी प्रयोगावस्था में हैं। भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। मैं मानता हूँ कि हमारी व्यवस्थाओं में कुछ विकृतियाँ, कुछ भ्रष्टाचार, और कुछ एक अवनति भी घुस आयी है। इन्हें सुधारना

पड़ेगा। किन्तु हमने एक ऐसी समाजव्यवस्था उत्क्रान्त की है, जो हजारों वर्ष से सुस्थिर रही है और जिसने हमारे समाज की उत्कृष्ट धारणा की है। समय की कठोर कसौटी पर खरी उतरी हुई है वह व्यवस्था। उसको त्याग कर उसके स्थान पर किसी अन्य व्यवस्था को हमने स्वीकार करना हो तो वह दूसरी व्यवस्था भी समय की कसौटी पर उतनी ही खरी सिँ हुई होनी चाहिए। आपके द्वारा सूचित व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु उस व्यवस्था को सफलतापूर्वक कम से कम 500 वर्ष कहीं पर अनुभव में आयी हुई होना चाहिए। कारण, इसमें राष्ट्र-जीवन का विचार होता है। मानव-जीवन का एक दिन राष्ट्रजीवन में मात्र एक क्षण के समान होता है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आपकी जीवन व्यवस्था को कम से कम 500 वर्ष उचित परिणाम देना चाहिए। उतने समय तक वह निर्दोष सिँ हुई, तो उसके बाद हम भारतीय लोग उसे स्वीकार करने में किंचित् भी नहीं हिचकिचाएंगे।'

भारतीय जीवन पद्धति एक मंथर किन्तु स्थिर गति से प्रवाहित होती रही है। उसका इतिहास सैंकड़ों-हज़ारों वर्ष पुराना है। यह हमारी आत्मा तुल्य है, कोई वस्त्र नहीं कि जब चाहा बदल लिया।

अब तनिक आधुनिक परिप्रेक्ष्य पर विहंगम दृष्टिपात किया जाए। कहते हैं कि सच कड़वा होता है। जिस सत्य से साक्षात्कार कुछ आंकड़ों के माध्यम से कराना चाहता हूँ हो सकता है वह कड़वा लगे, न भी लगे। सत्य तो सत्य ही है। विश्व की जनसंख्या में विस्फोट हो रहा है। अनुमान है कि सन् 2042 में विश्व की आबादी नब्बे ख़रब हो जाएगी। प्रतिदिन 3,76,000 शिशु धरती पर जन्म लेते हैं। अंधाधुंध शहरीकरण हो रहा है। आबादी विश्व भर में गांव से शहरों की ओर पलायन कर रही है जिसके कारण ऊर्जा के स्रोतों पर दबाव बेहद बढ़ गया है। सीयर्स टावर (Sears Tower) जो कि विश्व की सबसे ऊंची इमारतों में से एक है वह अकेली एक दिन में इतनी बिजली का उपभोग कर रही है जो 35,000 लोगों की आबादी वाले एक कस्बे के लिए पर्याप्त हो सकती है। पृथ्वी पर जीवित प्राणियों का मनुष्य केवल 1/2 प्रतिशत है किन्तु मानव जाति पृथ्वी के प्राकृतिक प्राथमिक उत्पादन का 40 प्रतिशत उपयोग करती है। बढ़ती हुई आबादी के कारण जिस गति से भोजन,

पानी और निर्माण सामग्री का प्रयोग हो रहा है और सड़क और रेल के विस्तार के साथ जिस बेढंगे तरीके से शहर अपने आप को बची-खुची प्रकृति पर फैला रहे हैं उसके कारण वन्य जीवन समाप्ति की ओर बढ़ रहा है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार वर्ष 2100 तक पृथ्वी पर मनुष्येतर जीवन का $2/3$ अंश समाप्त हो चुका होगा। संक्षेप में, शहरीकरण के कारण मानव जाति प्रकृति से वंचित होती जा रही है। विज्ञान के सहयोग से हम पृथ्वी पर निरंकुश शासन करना चाहते हैं किंतु हमारी आने वाली पीढ़ी जिन आपदाओं को भोगने के लिए विवश होगी उनके प्रति हम सर्वथा उदासीन हैं। हम यह भूल रहे हैं कि यदि प्रकृति का संतुलन एक सीमा से अधिक बिगड़ गया तो मानव जाति भी बच नहीं सकेगी।¹

तीव्र गति से बढ़ते हुए तापमान से होने वाली जल की कमी के कारण वर्ष 2080 तक लाखों लोगों के भूख और प्यास से मर जाने की संभावना है। शताब्दी के अंत तक 2 से 3 डिग्री सेल्सियस तापमान में वृद्धि के कारण 11 से 32 खरब मनुष्य पानी से वंचित हो जाएंगे। ऐसा 'इंटरगवर्नमेंटल पैनेल ऑन क्लाइमेटिक चेंज' (आई पी सी सी) की एक रिपोर्ट में कहा गया है। अगले सत्तर वर्षों में 20 से 60 करोड़ व्यक्ति भुखमरी से पीड़ित होंगे। गरमी के कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ जाएगा जिससे समुद्रतट पर रहने वाले लगभग 70 लाख घर नष्ट हो सकते हैं।²

चीन एक अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के रूप में उभर रहा है। उसकी औद्योगिक प्रगति का आभास समाचार पत्रों के माध्यम से हम सबको है। किंतु यह प्रगति किस कीमत पर। हाल के एक सर्वेक्षण से विदित हुआ है कि चीन में लगभग दो करोड़ बच्चे अपने माता पिता के सानिध्य और सहज स्नेह से वंचित हैं। इन बच्चों के माता पिता रोज़गार की तलाश और धनार्जन की चाहत में अपने स्थायी निवास से अन्यत्र चले गए हैं और अपने बच्चों को अपने वृद्ध माता पिता या रिश्तेदारों की देख-रेख में छोड़ गये हैं। हजारों गांवों में ऐसे दृश्य हैं कि बस्ती की आबादी में या तो वृद्ध हैं या बालक; युवा अन्यत्र जा चुके हैं। वर्ष

¹Jeremy Rifkin, President, the Foundation on Economic Trends, Washington D.C., City Lights-Urbanization and Its Perils for Humankind, TOI, 01.02.2007.

² (युनेस्को की पेरिस में हुई पांच दिवसीय सभा के प्रतिवेदन के आधार पर, देखें टाइम्स ऑफ इंडिया 31.01.07)

2005 में ऐसे देशांतर गमन करने वाले युवाओं की संख्या का अनुमान 14 करोड़ लगाया गया है। इन आंकड़ों का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टिकोण से दुःखद परिणाम यह है कि जो बच्चे अपने शैशव काल में अपने जन्मदाता माता पिता के प्राकृतिक स्नेह और संसर्ग से वंचित हो जाते हैं वे एकाकीपन, उदासीनता, हीनमनोभाव से पीड़ित होते हैं, वि।लय में उनकी अध्ययनक्षमता कम होती है और वे आपराधिक मनोवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाते हैं।³

यह तो हुआ अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य, जिसमें भारत भी सम्मिलित है। कुछ अपने ही देश के परिवेश पर और गहरी दृष्टि डाली जाए।

हमारा देश भारत अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। इन अनगिनत समस्याओं की अंतहीन चर्चा करने से, और केवल चर्चा करने से, कोई समाधान प्राप्त होने वाला नहीं है किंतु भारतीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में दो-तीन ऐसी समस्याओं की ओर संकेत करना समीचीन होगा ; ऐसी समस्याएँ जो अपनी जड़ें गहरी जमा चुकी हैं और कैंसर की तरह हमारे देश में प्रगति, उत्थान और सांस्कृतिकता की जड़ों को खा रही हैं। यदि समय रहते चेता न गया तो स्थिति नियंत्रण के बाहर जा सकती है और हमारी स्थिति उस वादी या प्रतिवादी की तरह होगी जो अपना मुकद्दमा हार चुका है।

पहली समस्या है भ्रष्टाचार । हाल ही के समाचार पत्रों में उत्तर प्रदेश के निठारी ग्राम में हुए बच्चों के अपहरण और हत्या का सिलसिला उजागर हुआ है। लगभग 31 बच्चे मारे गये हैं। अभी जांच जारी है। जिन पर विधि और व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी है उनकी घोर उदासीनता और लापरवाही सुस्पष्ट है। द्वितीय, दूरदर्शन के माध्यम से जो तीन वायरस (Virus) निरंतर फैलाए जा रहे हैं वे हैं Violence, Vulgariry और Vices. दूरदर्शन पर प्रसारण होने वाले अनेक कार्यक्रम हमारे चिंतन और दर्शन से मेल नहीं खाते। यह प्रदूषण हमारी संस्कृति में अबाध रूप से फैल रहा है। विशेषकर कम उम्र युवाओं, जिन्हें बहुत परिपक्व नहीं कहा जा सकता है और जिनके मानस का क्षरण इस सांस्कृतिक प्रदूषण के कारण सहज संभाव्य है उनके चिंतन को यह प्रभावित कर रहा है।

³ Saibal Dasgupta, *Children Bear Brunt of China's Growth*, TOI dt. 31.01.2007

तीसरी, जिस समस्या की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ वह एक ऐसी गंभीर समस्या है जिस पर आज भी प्रबुद्ध नागरिकों ने गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया है और यदि इस प्रदूषण ने अपने पैर एक बार जमा लिये तो विनाश के गर्त में जाना अवश्यभावी है। यह है, यौन-शिक्षा (sex education)। मैं उपस्थित आदरणीय देवियों से क्षमा याचना करते हुए इस विषय का थोड़ा स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। यदि विचार संप्रेषण में प्रयुक्त शब्द विन्यास के कारण कहीं अनायास शिष्टता और मर्यादा का उल्लंघन हो जाए तो वे मुझे क्षमा करें। युनेस्को और कुछ शक्ति संपन्न घटकों के प्रभाव में केन्द्र और अनेक राज्यों ने सैद्धांतिक रूप से यह स्वीकार कर लिया है कि एड्स और एच0 आई0 वी0 जैसे रोगों से लड़ने और उनकी रोकथाम करने के लिए हमारे बालकों और युवाओं को यौन शिक्षा देना आवश्यक है। मैंने वह पुस्तक देखी है जिसे छठी से आठवीं तक की कक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में यौन शिक्षा का समावेश स्वीकृत कर लिया गया है। उस पुस्तक में ऐसे अनेक चित्र हैं और उन चित्रों पर चर्चा है जिन्हें हम देख भी नहीं सकते। आप कल्पना कीजिए कि अबोध आयु के बालक बालिकाएं उन्हें देखेंगे; कक्षाओं में शिक्षक उन पर खुली चर्चा करेंगे। स्वाभाविक है कि बालक बालिकाएं वि।लय से घर आकर अपने माता-पिता से कुछ प्रश्न पूछेंगे जो उस विषय से संबंधित हैं जो कक्षा में पढ़ाए गए हैं किंतु कक्षा की पढ़ाई से उनकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई है। क्या माता-पिता अथवा गुरुजन यौन संबंधी इन प्रश्नों का उत्तर बच्चों को दे सकेंगे? मैंने एक कैलेंडर देखा जो गुजराती में है। युनेस्को से प्राप्त आर्थिक सहायता से अनेक राज्यों ने ऐसे कैलेंडर प्रकाशित कर दिए हैं जो घरों की दीवारों पर टांगे जाएंगे। जिन दीवारों पर हम राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, गांधी और नेहरू के चित्र टांगते आए हैं उन्हीं दीवारों पर अब यौनांगो, प्रजनन अंगों और परिवार नियोजन के साधनों के रंगीन चित्र टांगे जाएंगे और सुबह से शाम तक या जब तक रोशनी रहेगी देखे जाएंगे और दिखाए जाएंगे। उन परिवारों का वातावरण क्या होगा? एक संत ने प्रवचन करते हुए यह कहा था कि दीवार पर चित्र वह होना चाहिए जिससे कोई चरित्र बोलता हो। दीवार पर टंगे हुए महापुरुषों के चित्र हमें प्रेरणा और ऊर्जा देते हैं। प्राकृतिक दृश्यों के चित्र हमारे मन को आनंद और उल्लास देते हैं। निरंतर देखते-देखते इन चित्रों से हमारा एक अनकहा सवाद प्रारम्भ हो जाता है और हमारा तादात्म्य स्थापित होने लगता है, और दीवार पर टंगे प्रत्येक चित्र से

उठती मौन गूंज और हमारे चिंतन के बीच समरूपता प्रवाहित होने लगती है। हम डराने वाले या कोई भयावह आशंका को जन्म देने वाले चित्र दीवारों पर नहीं टांगते क्योंकि उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव हमारे मन में उदासी और उन्माद को जन्म देता है। जिस कैलेंडर का मैंने उल्लेख किया उसके चित्र क्या संदेश देना चाहते हैं और कौन सा प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं? एड्स और एच0 आई0 वी0 हमारे देश में नहीं जन्मे हैं। इनकी शुरुआत कहीं और हुई है और वहां से या तो ये आयात हुए हैं अथवा चोरी छुपे हमारे देश में घुस आए हैं। जिस जीवन पद्धति को हमारा चिंतन मान्यता देता है जैसे एक पत्निव्रत का पालन और विवाहेतर संबंधों का निषेध, प्रकृति के नियम के विरुद्ध संसर्ग का निषेध, यदि इन नियमों का पालन किया जाए तो एच0 आई0 वी0 और एड्स जैसे भयावह रोग हो ही नहीं सकेंगे। महामारी की तरह फैल रहे इन रोगों की रोकथाम का उपाय यह नहीं है कि हम इन रोगों को फैलने दें और फिर उनका इलाज करें। उचित और प्रभावी उपाय यह है कि ऐसे रोग जिन कारणों से उत्पन्न होते हैं उन्हीं की जड़ काटी जाए ताकि रोग उत्पन्न हों ही नहीं। हमें अपनी मान्यताओं, अपने विश्वासों और अपनी ही जीवन पद्धति को पुनर्स्थापित और सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। पाश्चात्य चिंतन के अंधानुकरण से हमारी समस्याएं सुलझेंगी नहीं, जटिल ही होंगी। हमें यौन शिक्षा नही योग शिक्षा की आवश्यकता है।

संक्षेप में, यदि कहा जाए तो आज हमारे देश में हिंसा बढ़ रही है, मर्यादाएं शिथिल हो रही हैं और चिंतन के स्थान पर प्रचार-प्रसार का महत्व बढ़ रहा है। सामाजिक और आर्थिक विशेषज्ञ यह कहते हैं कि आने वाले समय में हमारी राजनीति और हमारे सामाजिक व्यवहार का संपूर्ण नियंत्रण मीडिया के हाथों में होगा वे जिसे रोकना चाहेंगे रोक पाएंगे और जिसे बढ़ाना चाहेंगे बढ़ा देंगे। जो मीडिया पर नियंत्रण रखेगा वही हमारा निर्णायक और भाग्यविधाता होगा। हमारे सामने खड़ी समस्याओं के समाधान और सुखद भविष्य के निर्माण— इन दोनों में साहित्यकार और पत्रकार की महती भूमिका है। इन्हें अपने उत्तरदायित्व का अहसास होना चाहिए और उत्तरदायित्व के निर्वहन की तैयारी।

संपूर्ण विश्व और हमारे आसपास के परिवेश पर विहंगम दृष्टिपात किया जाए तो कुछ निष्कर्ष सार रूप में निकलते स्पष्ट दीखते हैं। यह वैश्वीकरण और उदारीकरण का युग है। विज्ञान और तकनीक ने अत्याधिक उन्नति की है और इस क्षेत्र में प्रगति ने तेज गति पकड़ रखी है किंतु हमारी यात्रा निरे भौतिकवाद की ओर मुड़ चुकी है। आध्यात्मिक प्रगति को लगभग तिलांजली दे दी गई है। एक व्यंगकार के शब्दों में इस यात्रा का नारा है – 'Welcome body, good bye soul; Build body, suppress the soul.'

हमारी युवा पीढ़ी को निरंतर इस दर्शन को स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया जा रहा है कि वर्तमान को भोगो, भविष्य की चिंता छोड़ दो। तत्कालिक लाभ के लिए मानव निर्मित साधनों द्वारा प्राकृतिक संपदा का क्रूर दोहन किया जा रहा है। मानव का मूल्य बढ़ रहा है, मानव-मूल्यों का मूल्य घट रहा है। संयुक्त परिवार तो टूट ही चुके हैं, परिवार भी टूट रहे हैं। विवाह की संस्था (the Institution of Marriage) जो नैतिकता का आधार है, क्षीण हो रही है। हाल ही में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है – फेन्टास्टिक वॉयेज (Fantastic Voyage) उसके लेखक रे कुर्जवैल तथा टैरी ग्रॉसमैन, एम0 डी0 हैं। वैज्ञानिक तथ्यों की नींव पर आधारित इस पुस्तक में लेखकों ने उस समाज का खाका खींचा है जिसके सदस्य हम शीघ्र ही होने जा रहे हैं। जो जीवन पद्धति हम जीएंगे या जीने के लिए विवश होंगे, उससे यह पुस्तक हमारा बेबाक साक्षात्कार कराती है। हमारा ही भविष्य, ऐसा भविष्य जिसका घटना अवश्यंभावी है। उस पुस्तक में परिवार की परिभाषा यह दी गई है—'like minded people living together'. समान सोच वाले व्यक्तियों का साथ-साथ रहना, यही परिवार होगा। आवश्यक नहीं कि वे पुरुष और स्त्री हों, वे माता-पिता, पुत्र-पुत्री हों। उनका आपस में कोई रिश्ता होना आवश्यक नहीं है केवल इतना पर्याप्त होगा कि उनकी सोच समान है। वे पुरुष पुरुष भी हो सकते हैं, स्त्री स्त्री भी हो सकते हैं। आयु के अन्तर का कोई महत्त्व नहीं। जब तक उनकी सोच समान है वे परिवार के सदस्य हैं। जिस दिन उनकी सोच में भिन्नता आ जाएगी वे परिवार के सदस्य नहीं रहेंगे। उन व्यक्तियों के साथ रहने में आयु के अन्तर की कोई प्रासंगिकता नहीं होगी और न ही संबंधों के स्थायित्व के लिए कोई स्थान।

क्या इन समस्याओं से जूझने के लिए भारतीय चिंतन प्रासंगिक है? भारतीय चिंतन क्या है? क्या वह समकालीन परिस्थितियों में सार्थक होगा? क्या उसकी उपादेयता भविष्य के लिए है?

मैंने एक विद्वान से सुना है कि सिकंदर जब अपनी विश्व विजय यात्रा पर निकला तो वह अपने गुरु अरस्तु से आशीर्वाद लेने गया। उसने अरस्तु से पूछा कि मैं विश्व विजय करके लौटूंगा आपके लिए क्या लाऊँगा? अरस्तु ने कहा— सिकंदर तुम अपनी यात्रा में भारत भी जाओगे, भारत की पाँच वस्तुएं ऐसी हैं जिनकी विश्व में कोई तुलना नहीं है। ये हैं गंगा, गीता, गायत्री, गौ और गुरु। इनमें से एक भी यदि ला सको तो मेरे लिए लेते आना।

भारत का धर्म, भारत की संस्कृति और भारत का चिन्तन इन सबका जन्म वेदों से हुआ है। यह माना जाता है कि जब मानवता की रचना नहीं हुई थी तब भी वेदों की रचना हो चुकी थी। वेदों में वही है जो ईश्वर ने स्वयं कहा है। यह धर्म आधारित मान्यता है, विश्वास है। जिन्हें धर्म में रुचि नहीं है वे भी मानते हैं कि वेदों में जो लिखा गया है वह ज्ञान में श्रेष्ठता की पराकाष्ठा है। हमारे पुराणों ने विशुद्ध वैदिक ज्ञान को आध्यात्म में परिवर्तित किया। अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थ रामायण में वेद-पुराण श्रुति और स्मृति ऐसे अनेक शास्त्रों का निचोड़ है।

एक विद्वान के अनुसार रामायण प्रयोग का ग्रन्थ है और गीता योग का ग्रन्थ है। रामायण में मानव मूल्यों और आदर्शों की श्रेष्ठतम अनुकरणीय प्रस्तुति है। गीता का जन्म अर्जुन के विषाद से हुआ है। विषाद दुःख से परे कोई अनुभूति है। भारतीय चिन्तन सुख और दुःख से परे उठकर आनंद की सर्जना करता है। कदाचित् विषाद आनंद का विपर्यय हो सकता है। गीता के द्वारा भगवान् कृष्ण ने भारतीय दर्शन को ज्ञान, कर्म और प्रेम में विभक्त कर तीनों में पूर्ण संतुलन बिठाया और इन तीन सूत्रों की रचना की जिन्हें नैतिकता और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में मौलिक एवं आधारभूत कहा जा सकता है। संत बिनोबा भावे ने महाभारत और रामायण को राष्ट्रीय ग्रन्थ कहा है। वे कहते हैं —“गीता का और मेरा संबंध तर्क से परे है। मेरा शरीर माँ के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं

अधिक मेरे हृदय और बुद्धि गीता के दूध से पोषित हुई हैं।” वे कहते हैं कि रामायण एक मधुर नीति काव्य है और महाभारत एक व्यापक समाजशास्त्र।

रामायण और श्रीमद्भागवत, ये भारतीय चिंतन के दो किनारे हैं। रामायण का संदेश है कि जो राम ने किया वह करो। रामायण में राम बोले बहुत कम हैं। राम के रूप में उन्होंने स्वयं को श्रवणीय के स्थान पर अनुकरणीय रूप में प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने जो लीला की है उसे सांसारिक अर्थों में अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता। उनकी लीला एक गहन रहस्य है जिसे बहुत साधना के उपरांत ही समझा जा सकता है। किंतु कृष्ण के रूप में वे मुखर हुए हैं। उन्होंने जो कहा है वह आदर्श संदेश हैं और करणीय हैं। इन दो अवतारों में भी भारतीय चिंतन की एक श्रेष्ठ विधा प्रकट होती है। राम अवतार में लक्ष्मण ने राम के अनुज बनकर उनकी सेवा की। राम ने छोटे भाई का भी उपकार माना और कहा अगले अवतार में तुम बड़े भाई बनना और मैं छोटा रहूंगा ताकि छोटा बनकर मैं तुम्हारी सेवा करूँ और इस अवतार में जो उपकार तुमने मुझ पर किया है उसका प्रतिदान कर सकूँ। कृष्ण अवतार में लक्ष्मण बलराम बने हैं। भारतीय चिंतन यह कहता है कि अपने से छोटा भी सेवा करे जोकि उसका कर्तव्य है तो उसका भी उपकार मानो और उस उपकार का भी प्रतिदान करो।

भारतीय चिंतन में पाप और पुण्य की सर्जना भी है और इन्हें परिभाषित किया गया है। धर्म से परे हटकर विशुद्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परखा जाए तो भारतीय चिंतन में समाहित पाप और पुण्य की अवधारणा केवल एक आचार संहिता है, विधि और निषेध, Do's and dont's, यह न करो और यह करो को सूचीबद्ध करने का प्रयास। पाप और पुण्य की ये परिभाषाएं केवल वैचारिक बुद्धिवाद अथवा कपोल कल्पना या पाखंड नहीं हैं। पाप और पुण्य की ये परिभाषाएं भारतीय चिंतन में रचे-पगे व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंश बनकर उसकी अंतरात्मा में पैठ जाती हैं। सज़ा का प्रावधान होते हुए भी कानून का पालन करने में कठिनाईयां आती हैं। कानून से भी अधिक प्रभावशाली कोई है तो वह है अंतरात्मा की आवाज़। अकेले में व्यक्ति कानून का उल्लंघन करने से नहीं डरता। जहां उसे कोई देख नहीं रहा होता है, वहां पालन करने के लिए और उल्लंघन न करने के

लिए कोई विवश करता है तो वह है उसकी अंतरात्मा की आवाज़ और पाप—पुण्य की परिभाषा।

पर्यावरण और प्रदूषण की समस्याएं हैं। करोड़ों रुपये उपाय और प्रचार—प्रसार पर व्यय करके भी इन समस्याओं का समाधान निकाले जाने में सफलता नहीं मिल रही है। हम विनाश की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। भारतीय चिंतन में प्रदूषण का निषेध और पर्यावरण की रक्षा को धर्म का अंग बनाकर अद्भुत व्यवस्था की गई। पृथ्वी, जल, वृक्ष, वायु, प्रकाश और अग्नि (Tर्जा का श्रोत) सभी को देव तुल्य स्थान देकर उन्हें पूजनीय बना दिया गया। भारतीय चिंतन ने यह व्यवस्था दी कि 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' ये पंच महाभूत हैं जिनसे शरीर की रचना होती है। यहीं से मनुष्य का शरीर बनता है और अंत में इन्हीं में विसर्जित होकर विलीन हो जाता है। हमने पुर्नजन्म के सिद्धांत को स्वीकार किया और माना कि जहां से आना है और जहां जाकर मिल जाना है उन्हें शुद्ध और पवित्र रखो, उनका आदर करो, उनकी पूजा करो। उन्हें प्रदूषित कर अपवित्र न करो।

रामचरितमानस में महाराज दशरथ ने तीन विवाह किये। उनकी तीन रानियां थीं। उनके चार पुत्र हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र राम राजसिंहासन पर बैठे और चक्रवर्ती सम्राट हुए। किंतु उन्होंने एक पत्नीव्रत का पालन किया और उनके केवल दो पुत्र हुए। परिवार नियोजन का यह आदर्श मानस में मिलता है। भगवान राम ने यह आदर्श कह कर नहीं, स्वयं पालन कर अपनी करनी के रूप में प्रस्तुत किया है।

बहुधा आरक्षण (reservation) की बात होती है। यह एक गहन मुद्दा बन गया है जिसके पीछे सामाजिक चिंतन कम और राजनैतिक स्वार्थ अधिक है। आरक्षण के घोर समर्थक भी हैं और घोर विरोधी भी। व्यक्तिगत रूप से मैं न तो आरक्षण का समर्थक हूं और न विरोधी। किंतु समाज का कोई भी घटक किन्हीं भी कारणों से पिछड़ा हुआ है और प्रगति के परिणामों में उचित हिस्सा पाने से वंचित है, उसे आगे बढ़ाकर समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के बलवती प्रयास ईमानदारी से किए जाने का समर्थक हूं। यदि भारतीय चिंतन में खोजा जाए तो उसमें जाति—पाति, छूआछात आदि के लिए कोई स्थान है ही नहीं। दो—तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे। संत रैदास चर्मकार थे। वे जूते बनाते रहते थे और भजन

करते रहते थे। उनके पिता ने उन्हें घर से इसलिए निकाल दिया कि वे साधू संतों के जूते बनाकर उनसे पैसे नहीं लेते थे जिसके कारण धंधे में घाटा होता था। वे ऐसे पहुंचे हुए वियोगी थे कि एक बार किसी ने उन्हें पारस पत्थर दिया जिसका प्रयोग वे करते तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए परिश्रम करने की आवश्यकता ही न रहती। किंतु संत रैदास ने पारस अपनी झोपड़ी की छत की घास में छुपा कर रख दिया। उसका उपयोग ही नहीं किया। मीराबाई ने उन्हीं रैदास को अपना गुरु बनाया। मीराबाई तो क्षत्राणी थी, उन्हें किसी ब्राह्मण गुरु का अभाव नहीं था। किंतु केवल गुणों से प्रभावित होकर उन्होंने एक तथाकथित निम्न कोटि के रैदास को अपना गुरु चुना। भगवान राम क्षत्रिय थे। शबरी जाति की भीलनी थी। राम ने न केवल शबरी के छुए हुए बल्कि उसके चखे हुए अर्थात् झूठे बेर प्रेम से खाए। केवट निषाद और इसी प्रकार के अनेक वनीय जाति के व्यक्ति जिन्हें हम आज आदिवासी कहते हैं उन्हें गले से लगाया, उनका आतिथ्य स्वीकार किया और उनके साथ मैत्री स्थापित कर उन्हें अपने भाई के समान माना। भारतीय वाग्मय में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं जिससे इस निष्कर्ष की पुष्टि मिलती है कि अनेक ऋषि—मुनि, साधक, सिद्ध और संत जिन्हें हम पूज्य मानते हैं और जिनके चित्र और मूर्तियां आज भी घरों में और मंदिरों में आदरपूर्वक स्थापित होते हैं आवश्यक नहीं कि वे ब्राह्मण या किसी उच्च जाति के ही हों, उनकी विद्वत्ता सिद्धियों और गुणों के आधार पर वे समाज का सम्मान पाने के अधिकारी माने गये हैं। हमारे चिंतन में जाति—पांति के लिए कोई स्थान है ही नहीं। हम तो कहते हैं— *जाति पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।*

भारतीय चिंतन इसी जीवंत संस्कृति से प्रसूत हुआ है और इसी संस्कृति में आज भी समाहित है जिसके दो ध्येय हैं— संपूर्ण विश्व का कल्याण और व्यक्तित्व का उदात्तीकरण। हमारे चिंतन का ध्येय बहुत सुंदर शब्दों में जयशंकर प्रसाद ने *कामायनी* में लिखा है— *‘औरों को हंसते देखो मन हंसो और सुख पाओ, अपने सुख को विस्तृत कर औरों का सुखी बनाओ।’*

हमारे शास्त्रों में अनेक मंत्र हैं, सूत्र हैं, श्लोक हैं जो भारतीय चिंतन को मूर्त रूप में दिग्दर्शित करते हैं। *‘वसुधैव कुटुम्बकम्’* का नारा भारत ने ही विश्व को दिया। हमारी

जीवन पद्धति कहती है— *सर्वेष्टु सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः*। हिंसा का कोई स्थान हमारे चिंतन में है ही नहीं। इसलिए महावीर ने उद्घोष किया *अहिंसा परमो धर्मः* और वे महावीर से भगवान महावीर हो गए। हम द्वार पर आए व्यक्ति को, भले ही वह अपरिचित हो, अतिथि मानते हैं और हमारा अपरिचय ऐसे अतिथि को देव तुल्य सम्मान देने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करता। *अतिथि देवो भवः*। हम भूखे रहकर भी अतिथि को भोजन कराने में विश्वास रखते हैं। हमारा चिंतन भूखे को रोटी देने तक ही सीमित नहीं है। हम कबूतर को दाना, चींटी को आटा, गाय को घास देने की व्यवस्था करते हैं और इस व्यवस्था को अपनी दिनचर्या में समाहित करते हैं। सड़क चलते प्यासे के लिए प्याT, भूखे या अकिंचन के लिए धर्मादा और निराश्रित के लिए धर्मशाला स्थापित करते हैं। हमारे चिंतन में नारी आदरणीय ही नहीं पूजनीय है। हमारी मान्यता है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। सनातन धर्म के अनुसार यज्ञ, पूजा, तीर्थयात्रा या कोई भी धार्मिक या सामाजिक कार्य करो उसका फल पति को तब तक नहीं मिलता जब तक कि उसकी पत्नी जिसे अर्धांगिनी कहा जाता है उसके साथ न हो। 'जैन्डर जस्टिस' (Gender justice) के इससे गहरे बीज कहां मिलेंगे? न केवल हम कहते हैं, विश्वास करते हैं और अपने आचरण में प्रयोग करते हैं। विश्व भर को संदेश देते हैं हमारी इस प्रार्थना के माध्यम से— *अस्तो मा सद्गमयः। तमसो मा ज्योर्तिगमयः। मृत्यो मा अमृतगमयः*। ऐसी प्रार्थना और ऐसा सशक्त संदेश भारतीय चिंतन के अतिरिक्त विश्व के किसी अन्य चिंतन में मिलता ही नहीं है।

हमारे सामने समस्याएं तो अनेक हैं। प्रश्न यह है कि समाधान क्या और कहां हैं? मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाली एक लघु आकार की परिचय-पुस्तिका में प्रकाशित सशक्त संदेश आता है उसे तद्वत्त्व प्रस्तुत करना चाहता हूं। लिखा है— 'समूचे विश्व में निरन्तर ऐसी घटनाएं बढ़ रही हैं जो स्वस्थ समाज के लिए घातक हैं। इससे भी बड़ी विसंगति यह है कि समाज न तो इन घटनाओं का मुखर विरोध कर रहा है और न ही घटनाओं की रोकथाम के लिए गंभीर विचार-विमर्श। छुटपुट विरोध यदि कहीं दृष्टिगोचर होता है भी है तो नारों या जुलूस की शक्ल में। सतही विचारों और सनसनीखेज तात्कालिक बयानों के बीच विवेक अनुपस्थित दिखलाई पड़ता है। हम सभी

जानते हैं कि विवेकपूर्ण विचार—मंथन से गूढ़तम समस्याओं का भी निदान तलाशा जा सकता है, कम से कम एक सार्थक पहल तो की ही जा सकती है'।

यह संस्था और इस संस्था से जुड़े हुए व्यक्ति निरंतर बिना थके अपना काम करने में जुटे हुए हैं। यही आशा की किरण है। डॉ० वासुदेव पोरीर की आयु आज सत्तर वर्ष से अधिक की है। लगभग पच्चीस वर्ष तक शोध में लगे रहकर शोध के परिणामों का दस्तावेज उन्होंने 'विश्व की काल यात्रा' नामक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ में समाहित सामग्री को पढ़ने के लिए और डॉ० पोरीर की अनुमति लेकर उसमें से कुछ चुनकर अपने साथ ले जाने के लिए तमाम विश्व के वैज्ञानिक, विद्वान और शोधकर्ता उनके पास आते हैं। आयु का कोई प्रभाव उनकी गति पर परिलक्षित नहीं होता। ऐसा नहीं है कि कोई कठिनाईयां या चुनौतियां उनके सामने आती नहीं हैं, पर वे बाधाओं को पार करते हैं। उनका न तो आत्मविश्वास हिलता है और न ही उनके पैर डगमगाते हैं। इन जैसे लोगों की लगन देखकर खुमार बाराबंकी का एक शेर याद आता है जो उनकी अनंत यात्रा को परिभाषित करने के लिए बहुत उपयुक्त है। लिखा है—

गम मेरे साथ—साथ बहुत दूर तक गए।

मुझमें थकन न पाई तो बेचारे लौट गए।।

आज का आयोजन एक सार्थक आयोजन है। आज की संध्या सार्थक हुई। अच्छा है कि हम कुछ करें। पर यदि हम स्वयं कुछ न कर पाएं तो जो कर रहे हैं कम से कम उनको वंदन—अभिनंदन कर प्रोत्साहन तो दें। और अपने लिए प्रेरणा प्राप्त करें। ऐसे अभिनंदन और ऐसे आयोजन होते रहने चाहिए, इस उम्मीद के साथ कि —

इक न इक शम्मा जलाई रखिए।

सुबह ज़रूर होगी माहौल बनाया रखिए।।

भारतीय होने का अर्थ है, भारत से जुड़े होना। भारतीय होना केवल पारिभाषिक नाम नहीं है, भारतीय होने से जुड़ा है भारत का वंशज होने की पहिचान, भारत मां की सन्तान होने का अभिमान, भारत भूमि की मिट्टी से इस शरीर की रचना हुई है इसका अहसास, भारतवर्ष की सीमाओं की रक्षा करने का उत्तरदायित्व और भारत का होने के नाते इसके सम्पन्न साहित्य, उदात्त दर्शन और गहन चिन्तन से लगाव। यह स्मरण हो आता है कि भारत कभी विश्व गुरु रहा है। आध्यात्मिक उन्नयन में न कोई हमारा जोड़ रहा है और न कोई हमारा सानी। यह तो स्मरण रहे पर इस चिन्ता के साथ कि हमारा ह्यस तो हुआ है, पतन की ओर कुछ बढ़े हैं। इस सब का मिला जुला रूप है भारतीयता।

भारत क्या है? भारतीयता क्या है? भारतीय होने का क्या अर्थ है? इन सब पर सोच-विचार और उसका सार, यही है भारतीय चिंतन। चिंतन विचारों को आकार देता है, उन्हें निरूपित और प्रतिपादित करने की प्रक्रिया को चैतन्य करता है। चिंतन की प्रक्रिया बुद्धिजन्य है। स्वाभाविक है कि चिंतन का मुख्य श्रोत होता है साहित्य—प्राचीन और अर्वाचीन। अन्य घटक जो चिंतन को प्रभावित करते हैं वे हैं हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, हमारा परिवेश और हमारे पोषक अथवा प्रहारक तत्व।

भारतीय वेदान्तिक दर्शन का अद्वैतवाद, जहां एक ओर जांत-पांत और छूआछूत की विचारधाराओं की उन जड़ों को काटता है जो संकीर्ण मस्तिष्कों की उपज है, वसुधैव कुटुम्बकम् (Universal Brotherhood) की अत्यन्त उदार दृष्टि देता है। भारतीय चिन्तन से मेल न खाने वाली शक्तियों ने वर्षों तक भारत पर शासन किया है उसी समय में हमारे चिन्तन में प्रदूषण प्रविष्ट हुआ है जिसके दुष्प्रभावों से हम मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

हाल ही में दो दुर्लभ शोध ग्रन्थ मुझे देखने में आए हैं। इन्हें देखकर न केवल ताज़गी मिली है, संचित ज्ञान में नवीनता का स्पर्श हुआ है बल्कि आत्मविश्वास भी समृद्ध हुआ हमारे अपने चिन्तन के प्रति वृद्धि हुई है। 'विश्व की काल यात्रा' (प्रकाशक, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली) डॉ० वासुदेव पोीर द्वारा रचित ग्रन्थ है,

लगभग 25 वर्ष एक निष्ठ लगन और शोध का परिणाम। इसमें ऋषि प्रज्ञा का विज्ञान चिंतन लिपिबद्ध है। लेखक के शब्दों में 'विश्व की काल यात्रा' आनन्दघन महासत्ता की आनन्द यात्रा का इतिहास है। विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम जहां अभी शोध कर रहा है वहां हमारी ऋषि प्रज्ञा हजारों वर्ष पूर्व पहुंच चुके थे। विज्ञान के लिए जो आज रहस्यमय और अचिन्त्य है, वही ऋषि प्रज्ञा के समक्ष अति सहज। शोध पद्धति में पश्चिम 6 हजार वर्ष से पीछे नहीं जा पाया। भारतीय चिन्तन अपनी खोज वहां तक ले गया जहां और जिस बिन्दु से सृष्टि की रचना प्रारंभ हुई थी। ब्रॉण्ड में घटित घटनाओं की काल गणना में पश्चिम अनेक निष्कर्ष गणना के साथ लगभग शब्द का प्रयोग कर उल्लेख करता है, वहां हमारे आदिग्रंथों में उल्लिखित ऋषि प्रज्ञा पल के अनेक खंड कर उसमें की सुनिश्चित गणना का अधिकारिक उल्लेख करती है। डॉ० पी० के निष्कर्ष सरल भाषा में कहे जाए तो यह है कि विज्ञान आज तुरत गति के साथ ऋषि चिन्तन के अति निकट आ रहा है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक विज्ञान जहां आज पहुंचने का प्रयास कर रहा है वहां हम सैकड़ों हजारों वर्ष पूर्व पहुंच चुके। हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों का उल्लेख हमारे प्रामाणिक आदिग्रंथों में है। भारतीय चिन्तन ब्रॉण्ड के जन्म का समय निश्चित करता है और भविष्य की काल गणना करके आगामी आयु का भी उल्लेख निश्चय के साथ कर सकता है। वह घड़ी जिसे हमारे चिन्तन में प्रलय की संज्ञा दी गई। अनेक पश्चिम के विद्वान स्वीकार करते हैं कि शोध के लिए सूत और साधन वे हमारे ऋषियों द्वारा लिखित ग्रंथों से निकालते हैं।

Pride of India- A Glimpse into India's Scietific Heritage (प्रकाशक संस्कृत भारतीय, नई दिल्ली) हमारी अनेक भ्रांतियां ध्वस्त हुई हैं। यह ग्रन्थ हमारा आत्मविश्वास जाग्रत करता है कि हम न केवल दर्शन शास्त्र में बल्कि भौतिक विज्ञानों में भी ज्ञान समृद्ध हैं। संस्कृत किसी धर्म विशेष की भाषा नहीं है; यह संपूर्ण विज्ञान सम्मत भाषा है, आदि भाषा है एवम् सभी भाषाओं की जननी है। संस्कृत में न केवल धर्म और आध्यात्म है बल्कि विज्ञान और कला अनेक विषयों पर प्रामाणिकता के साथ लिखा गया है। सनातन धर्म ग्रन्थ केवल कर्म कांड या दर्शन शास्त्र मात्र नहीं है। अनेक आधुनिक विज्ञान के विषयों पर जिसमें गणित भी सम्मिलित है, भारतवर्ष में तब खोज हो चुकी थी

जब पाश्चात्य चिन्तन प्रारंभ भी नहीं हुआ था और इसका उल्लेख हमारे पौराणिक और वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। यही खोज श्रुतियों और उपनिषदों में भी मिलती रही है।

प्रत्येक भारतीय जिसे भारतीय होने का अभिमान है उसे यह ग्रन्थ अपरिहार्य रूप से पठनीय है। भारतीय चिन्तन चिर प्रासंगिक और उपादेय है, और रहेगा।